# होने के पहले लोगों को जगायें

मीडिया की भूमिका की पड़ताल करते हुए उसके मोटे तौर पर चार स्वरूप सामने आते हैं- एक विवेचक, दूसरा आलोचक, तीसरा खोजी तथा भंडाफोड़ी और चौथा प्रशंसक। पिछले दो दशक से कुछ अधिक समय से उसके पहले तीन रूप कम से कमतर होते जा रहे हैं। यह समय वह है, जब मीडिया व्यवसाय के रूप में पूरी तरह से स्थापित हो चुका है। यह व्यावसायिक विवशता भी हो सकती है कि वह सरकार या बाजार से कोई बड़ा या स्थायी पंगा नहीं ले सकती है। यह भी उसकी ऐतिहासिक विवशता ही है कि उसे अपने पाठकों अथवा दर्शकों को अपने इस बदले स्वरूप से पूरी तरह परिचित भी नहीं कराना चाहता है। इसलिए गाहे-बगाहे वह उन सामाजिक राजनीतिक समस्याओं पर लोगों को शिक्षित करता या उपदेश देता नजर आता है। महिलाओं, बच्चों, उत्सवों में रूढ़िवादिता, पानी संरक्षण आदि मुद्दे इसी तरह के है। मतदान जागरूकता, भ्रष्टाचार, प्रशासन से जुड़ी नागरिक समस्याएं भी कुछ इसी तरह की बातें हैं। इस सब में उसकी पैरवी या पक्षधरता अथवा सक्रियता कितनी कारगर रही है यह सब जानते हैं। हो सकता है कुछ लोगों को मीडिया का यह रूप बहुत भाता हो पर ज्यादातर विवेचक मीडिया की इन कार्यवाहियों को उसका मुखौटा ही मानते हैं। इस सब से वह न तो जन सेवक नजर आता है और न ही वह प्रजातंत्र का पहरूआ कहा जायेगा।

इस प्रसंग में यह तथ्य भी जुड़ जाता है कि 1960 के बाद के बरसों में वे समाचार पत्र जो लोक न्यास या नागरिक सेवाओं से जुड़ी संस्थाओं की ओर से प्रकाशित होते थे, वे लगातार बंद होते रहे हैं या उन्हें व्यवसायियों को बेच दिया गया है। हितवाद, फ्री प्रेस, मराठा, सर्च लाइट, पायनियर, स्वदेश, तरुण भारत की यह सूची इतनी ही नहीं है। यह व्यावसायिक स्वरूप में असफल रहे हैं पर लोगों को जागरूक करने और उनकी समस्याओं के साथ खड़े रहने का उनका अपना इतिहास रहा है। वे आज के व्यावसायिक पत्रों या चैनलों की तरह सिर्फ दिखाऊ संवेदना नहीं व्यक्त करते थे। वे जोखिम उठाते थे किसी अपने छिपे हुए व्यावसायिक हित लाभ के लिए नहीं वरन अपने अस्तित्व को दांव पर लगाते हुए। वे अर्थिक संकटों में सतत फंसे रहते थे। उनके प्रकाशन से जुड़े लोग उनको दान, अनुदान आदि देकर उनका प्रकाशन संभव कराते थे। फिर भी वे अपने पथ से विचलित होने के बजाय संकटापन्न स्थितियों से समझौता करते हुए सत्ता या

बाजार से समझौता नहीं करते थे। इस तरह की कसौटियों पर आज कोई मीडिया है, इसे दिया लेकर ढूंढना होगा।

आजादी के बाद के बीस बरसों की तुलना में बाद के चालीस बरस लोक राज्य, लोक प्रशासन तथा नागरिक विकास की दृष्टि से बहुत फर्क वाले रहे हैं। जो लोग भी उन दिनों से परिचित हैं वे जानते हैं कि उन दिनों में राजनेता इतने भ्रष्ट नहीं थे। प्रशासन के अधिकारी-कर्मचारी भी लोगों के काम के लिए पैसे या टिप्स नहीं लेते थे। हां यह सब प्रारंभ तो हो रहा था पर इसकी गति बहुत धीमी थी। इसके बाद के बरसों में राजनीति, प्रशासन, न्यायपालिका सभी के लिए लोक, आर्थिक खेती की तरह होता चला गया है, यह अब कोई तथ्य नहीं मांगता और न इससे कोई इनकार कर सकता है। यह भी एक कड़वी सच्चाई है कि इन चालीस-पचास बरसों में सत्ता और कारपोरेट बाजार से जुड़े लोग इतने चतुर और चालाक हो गये हैं कि उनके अपकर्मों को सहजता से सामने नहीं लाया जा सकता। उनके भ्रष्ट आचरण और व्यवहार सोने के ढक्कन से इस तरह से बंद किये जाते हैं कि उन्हें खोजी नजर भी बड़ी मुश्किल से खोज पाती है। सरकार इतनी सफाई और चतुरता से राज्य के विकास कायक्रम बनाती है कि उसकी मलाई आसानी से उसके पल्ले आ जाती है फिर भले ही लोगों का विकास विनाश में बदलता रहे। सिंचाई, बिजली, खनन, उद्योग से जुड़ी योजनाओं की विवेचना करके देख लें, सच सामने आ जायेगा।

मीडिया का काम भी सन 60-70 तक जितना आसान था, अब वह भी कठिन से कठिनतर होता गया है। यह कठिनाई दोनों स्तर पर है। एक तो काम करने की जटिलतायें बढ़ी हैं। वेतन स्तर पहले से बहुत अच्छा है पर काम का दबाव और तनाव बढ़ा है। पहले की तुलना में नौकरी की अस्थिरता तथा असुरक्षा बढ़ी है। इसके साथ ही पत्रकारिता में लोकाभिमुखी कामों के लिए जोखिम बढ़ी है। मीडिया ने समाचार, विकास समाचार, अनुसंधान आदि पर पहले भी धन नहीं लगाया और आय बढ़ने की तुलना में अब भी नहीं बढ़ा है।

पत्रकार अपने बूते पर यह सब कर रहा है। ऐसी स्थिति में व्यावसायिक दृष्टि, निहित स्वार्थ के हित, सत्ता संघर्ष आदि के समाचारों में विकास आदि के समाचारों की तुलना में बहुत वृध्दि हुई है। यह समय की जरूरत है कि 1952 और उसके पहले के मीडिया की तरह केवल सूचनाओं, उभय पक्षों की जानकारियों, आधे-अधूरे तथ्यों के आधार पर जानकारियाँ न देकर विवेचना, अनुसंधान और लोकाभिमुख खबरों को उनकी व्याख्या तथा विश्लेषण तथा विशेषज्ञ टिप्पणियों के साथ दी जायें। उन खबरों पर सतत काम हो जो योजनायें और कार्यक्रम आम लोगों के लिए

मुलम्मे के साथ प्रस्तुत किये जा रहे हैं। एक तरह से सक्रिय और निरंतर मुध्दा केन्द्रित पत्रकारिता की जरूरत है। जो होने वाला है, या जो लोकलुभावन की ओट में किया जाने वाला  है, सत्ता में बने रहने या किसी का अहित करने के लिए किया जा रहा है, उसे सामने लाने के लिए जोखिम उठाने वाली पत्रकारिता चाहिये। यह सरल तो नहीं है पर अंसभव भी नहीं है।

****